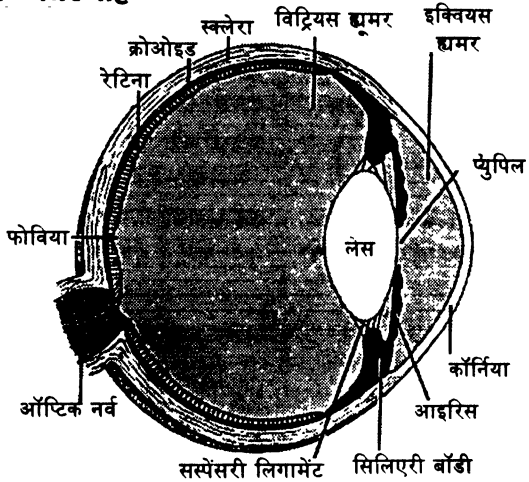

हमारी आंखें

जे. बी. एस. हाल्डेन

कोई संवेदी अंग कैसे काम करता है, इसका कुछ अंदाज़ हम आंख को देखकर लगा सकते हैं। शरीर के अन्य अंगों की अपेक्षा हम आंखों के बारे में कहीं ज़्यादा जानते हैं क्योंकि यही एकमात्र अंग है जिसका अध्ययन काफी हद तक बगैर चीरफाड़ के किया जा सकता है।

तुलना आंख-कैमरे की

जहां तक इसकी प्रकाश व्यवस्था का सवाल है, यह लगभग किसी कैमरे के समान होती है। सामने की ओर एक उभरी हुई पारदर्शी खिड़की होती है जिसे कॉर्निया कहते हैं। प्रकाश को फोकस करने का अधिकतर काम कॉर्निया ही करता है। मगर दूरी के हिसाब से तालमेल बनाने का काम एक लैंस करता है जो तारे (प्युपिल) के पीछे स्थित होता है। आंख की सफेद पृष्ठभूमि में जो काला, नीला या भूरा गोला है उसे पुतली कहते हैं और इस पुतली के बीच एक काला छल्ला तारा यानी प्युपिल कहलाता है।

मनुष्य व अन्य स्तनधारी प्राणी लैंस को दबाकर फोकसिंग करते हैं। यही स्थिति पक्षियों तथा अधिकांश सरिसृपों यानी रेप्टाइल्स (सांप, छिपकली वगैरह) में भी होती है। इन जंतुओं में लेंस लचीले पदार्थ से बना होता है। मगर मछलियों में फोकसिंग की क्रिया लेंस को आगे-पीछे करके की जाती है। यह जानना रोचक होगा कि क्या प्रथम कैमरा बनाने वाले ने पहले मछली की आंख का अध्ययन किया था।

मगर कैमरे और आंख के बीच कई महत्वपूर्ण फर्क भी हैं। एक महत्वपूर्ण फर्क यह है कि जहां कैमरे में संवेदी

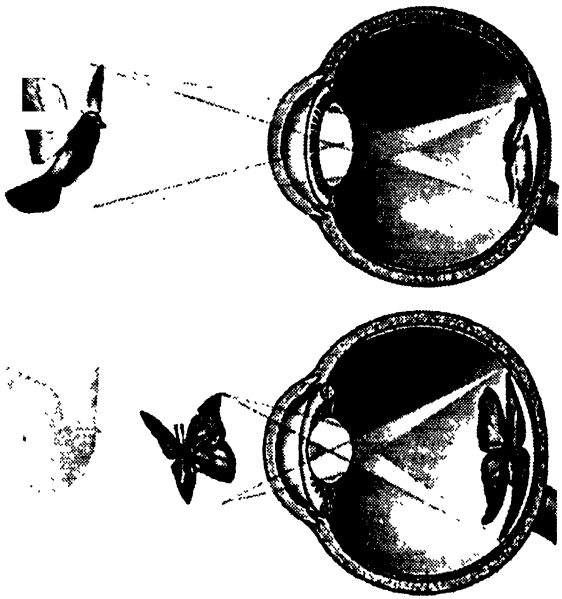

दूर या पास: जब आंख किसी दूर की या पास की वस्तु को देखती है तो वह लेंस की मोटाई में दूरी के हिसाब से एडजस्टमेंट करती है ताकि रेटिना पर स्पष्ट तस्वीर उभर सके। जैसे **पहले चित्र** में आंख काफी दूर स्थित पक्षी को देख रही है। यहां पर लेंस को थामे रखने वाली पेशियां लेंस को थोड़ा खींचकर चपटा बना देती हैं। **दूसरे चित्र** में आंख एक पास मौजूद तितली को देख रही है। इस स्थिति में इन्हीं पेशियों की वजह से लेंस का चपटापन कम हो जाता है, और वह ज़्यादा गोलाई ले लेता है। दोनों ही स्थितियों में रेटीना पर उल्टा बिम्ब (ऊपर वाला भाग नीचे की ओर) बनता है लेकिन इस तस्वीर के बारे में दिमाग को भेजे संदेशों से दिमाग सही तस्वीर को समझ लेता है।

फिल्म (पर्दा) सपाट होता है, वहीं आंख का पर्दा (रेटिना) अवतल होता है। दूसरा अंतर यह है कि एक अकेली आंख से भी जितने बड़े दायरे की चीज़ें देखी जा सकती हैं, वह अधिकांश कैमरों से कहीं बड़ा होता है।

यदि मात्र एक प्रकाश यंत्र की तरह देखें तो एक अच्छे कैमरे की अपेक्षा आंख में कई कमियां होती हैं। मगर आंख में दो ज़बर्दस्त कौशल भी हैं। पहला तो यह कि आंख छोटी-मोटी चोट की मरम्मत स्वयं कर लेती है। दूसरी बात यह है कि इसकी संवेदी फिल्म ज़रूरी होने पर पूरी एक सदी या उससे भी ज़्यादा समय तक काम दे सकती है और प्रकाश की अलग-अलग तीव्रता के साथ ताल-मेल बैठा सकती है। इसका एक कारण तो बहुत सीधा-सादा है। मनुष्य प्रकाश (ऑप्टिक्स) के बारे में हज़ारों सालों से थोड़ा-बहुत जानता है, और पिछले करीब 300 वर्षों से काफी कुछ। रसायन-शास्त्र को एक तार्किक आधार लगभग 200 वर्ष पूर्व डाल्टन ने प्रदान किया था। फोटोग्राफी का रसायनशास्त्र हम अभी समझने ही लगे हैं।* हो सकता है कि आज से सौ साल बाद हम एक ही फोटोग्राफिक प्लेट का उपयोग बार-बार कर सकेंगे। और शायद हम गैस बत्ती और तारों की रोशनी में भी फोटो खींच सकेंगे। हमारी आंख में रेटिना का उपयोग इसी तरह होता है।

आंखों की भीतरी बनावट

प्रत्येक रेटिना लाखों संवेदी कोशिकाओं से बना होता है और प्रत्येक संवेदी कोशिका के साथ एक-एक तंत्रिका कोशिका जुड़ी होती है। संवेदी कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं – शंकु (कोन्स) जो हमारे जाने-पहचाने रंगीन दृश्य देखने का काम करते हैं, और छड़ (रॉड्स) जो लगभग अंधकार की स्थिति में रंगहीन (काला-सफेद) नज़ारा दिखाती हैं। रेटिना के एक वर्ग मिलीमीटर क्षेत्र में करीब 10 हज़ार शंकु कोशिकाएं होती हैं। इसी से तय होता है कि हम छोटी-से-छोटी, कितनी छोटी वस्तु को देख सकेंगे। यदि दो बिन्दुओं से आने वाला प्रकाश एक ही शंकु कोशिका पर गिरे तो हमारी आंख उन्हें अलग-अलग नहीं देख सकती, फिर फोकस चाहे जितना अच्छा हो।

अब यदि हम आंख का मॉडल बनाएं, तो हमारा प्रकाश संवेदी पर्दा हज़ारों प्रकाश विद्युत सेल से बनेगा। जिस-जिस सेल पर प्रकाश पड़ेगा उससे जुड़े तार में विद्युत धारा प्रवाहित होगी। इस तरह से हम पूरे-के-पूरे चित्र (विद्युत के माध्यम से) दूर-दूर

** यह लेख 1949 में लिखा गया था।*

तक भेज सकते हैं – हालांकि यह यंत्र काफी लम्बा चौड़ा होगा। किन्तु हमारा प्रकाश संवेदी अंग इस तरह काम नहीं करता। प्रत्येक हिस्से की गतिविधि सिर्फ इस बात से तय नहीं होती कि इस वक्त उस पर कितनी व कैसी रोशनी पड़ रही है, बल्कि इस बात से भी तय होती है कि पिछले क्षण (यानी अतीत में) क्या स्थिति थी और उसके पड़ोसियों की क्या स्थिति है, वे क्या कर रहे हैं।

सीमाएं और खूबियां

यह व्यवहार संवेदी अंगों का सामान्य व्यवहार है। हम सभी जानते हैं कि यदि हम कुछ देर तक अपना दायां हाथ गर्म पानी में और बायां हाथ ठण्डे पानी में रखें और फिर दोनों को गुनगुने पानी में रखें, तो यह गुनगुना पानी दाएं हाथ को ठण्डा और बाएं हाथ को गर्म महसूस होगा। यह प्रयोग हम आंखों के साथ नहीं कर सकते क्योंकि रेटिना के विभिन्न हिस्से एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। मगर हम दो व्यक्तियों पर एक साथ यह प्रयोग कर सकते हैं – एक व्यक्ति किसी अंधेरी जगह में हो और दूसरा चमचमाती धूप में। दोनों को एक मद्धिम रोशनी वाले कमरे में ले जाएं तो अंधेरे से आए व्यक्ति को सब कुछ तुरन्त स्पष्ट दिखने लगेगा जबकि धूप से आए व्यक्ति को कुछ नज़र ही नहीं आएगा।

रेटिना के अलग-अलग हिस्से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। कागज़ का एक भूरा टुकड़ा यदि काले कागज़ पर रखा जाए तो लगभग सफेद नज़र आता है, जबकि सफेद कागज़ पर रखा जाए तो लगभग काला दिखता है। इसी प्रकार से नीली पृष्ठभूमि में रखा जाने पर सफेद कागज़ थोड़ा पीला-सा दिखता है जबकि पीली पृष्ठभूमि में रखा जाए तो नीला-सा नज़र आता है। सावधानीपूर्वक किए गए प्रयोगों से पता चलता है कि इस तरह के विपरीत असर पैदा करने वाली प्रक्रियाएं मस्तिष्क में नहीं बल्कि रेटिना में ही होती हैं। यह संभव है कि आंख में एक इलेक्ट्रोड लगाकर रेटिना को प्रकाशित किया जाए और देखा जाए कि कितना विद्युत विभव उत्पन्न होता है। उक्त प्रयोगों में इसी तरीके का उपयोग किया जाता है।

दरअसल हमारे संवेदी अंग रोज़मर्रा के कामकाज के लिए अनुकूलित हैं, ये वैज्ञानिक अवलोकनों के लिए नहीं हैं। आंखें रंगों में फर्क (hue) और तीव्रता में अंतरों को इस ढंग से उभारती हैं कि हम चीज़ों को उनकी पृष्ठभूमि से अलग करके देख पाते हैं। जितने तंत्रिका तंतु उपलब्ध हैं, उसके अनुसार प्रति सेकण्ड एक सीमित संख्या में ही तंत्रिका संकेत भेजे जा सकते हैं। प्रकाश की तीव्रताओं में अंतर कर पाना ज़्यादा उपयोगी है,

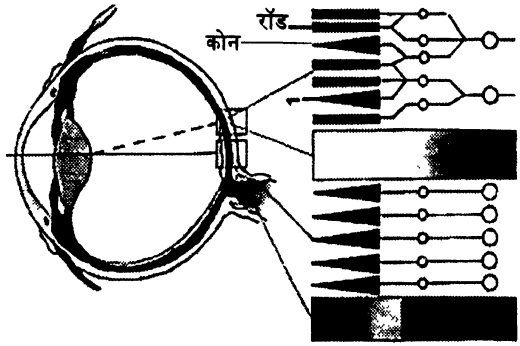

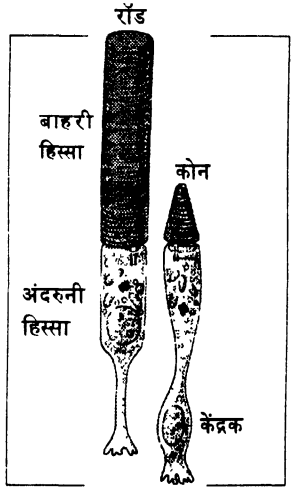

रॉड एवं कोन: रेटिना पर बड़ी संख्या में रॉड एवं कोन संरचनाएं होती हैं। ये कोन या रॉड उन पर पड़ने वाले प्रकाश कणों (फोटॉन) को तंत्रिका आवेग में बदलकर दिमाग की ओर भेजते हैं। रॉड एवं कोन की अपनी विशेषताएं हैं और खास किस्म के काम भी हैं। कोन तीव्र रोशनी और रंगों के प्रति ज़्यादा संवेदनशील होते हैं। रंगों में भी वर्णक्रम के पीले और हरे वाले हिस्सों के प्रति। मंद प्रकाश वाली स्थिति होने पर कोन प्रकाश के प्रति पहले जैसे संवेदनशील नहीं रहते। रॉड मंद प्रकाश के प्रति ज़्यादा संवेदनशील होते हैं। वैसे रॉड सफेद या धूसर प्रकाश में अपने काम को बेहतर अंजाम देते हैं। बाएं चित्र में रॉड एवं कोन को थोड़ा बड़ा करके दिखाया गया है ताकि उनकी संरचना को समझा जा सके।

बजाए तीव्रताओं का सही मापन कर पाने के। तीव्रताओं को नापना तो शायद तब उपयोगी हो जब हम ऐसे कमरे में रहें जहां एक-सा प्रकाश हो और छायाएं हों ही नहीं।

हमारे अन्य संवेदी अंग भी लगभग इसी तरह काम करते हैं। यदि हम किसी साउण्ड प्रूफ कमरे में आधे घण्टे बैठे रहें, तो हमें अपने दिल की धड़कन भी साफ सुनाई देने लगेगी। इसी प्रकार से हम तेज़-से-तेज़ गंध के भी आदी हो जाते हैं, अन्यथा नालियां साफ करने वाले तो पागल हो जाएं। कहने का मतलब यह है कि संवेदी अंग हमें पदार्थों के बारे में अपने सापेक्ष सूचनाएं देते हैं, मात्र पदार्थों के बारे

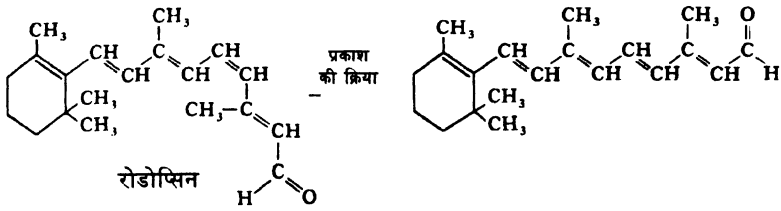

प्रकाश संवेदी पदार्थ: यूं तो रॉड और कोन दोनों में ही प्रकाश संवेदी पदार्थ पाए जाते हैं। रॉड में आमतौर पर रोडोप्सिन पाया जाता है। जब भी रोडोप्सिन पर प्रकाश टकराता है तो यह थोडे फर्क आइसोमर यानी समअवयवी में तब्दील हो जाता है। इस परिवर्तन के कारण दिमाग की ओर कोशिका एक विद्युत संकेत भेजती है। इसी तरह कोन में अलग-अलग किस्म के प्रकाश संवेदी पदार्थ पाए जाते हैं।

में नहीं। इसीलिए विश्व का वैज्ञानिक विवरण कई बार इतना अजनबी लगता है। पानी के तापमान के बारे में एक थर्मामीटर इतनी सटीक जानकारी इसलिए देता है क्योंकि वह स्वयं अपने अतीत से प्रभावित नहीं होता, और न ही अन्य तापमापियों से। इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपनी संवेदनाओं पर भरोसा न करें। हमारे पास इस दुनिया के बारे में जानने का और कोई तरीका भी तो नहीं है। कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि हमारे संवेदी अंग मशीनें नहीं हैं, दरअसल कई मामलों में वे मशीन से बेहतर हैं और कुछ अन्य मामलों में बदतर।

इसका मतलब यह भी है कि किसी भी काम में प्रत्येक संवेदी अंग का उपयोग कुछ स्थितियों में ही किया जा सकता है। अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग मात्रा में प्रकाश की ज़रूरत होती है। रात में उड़ने वाले किसी लड़ाकू पायलट के लिए ज़रूरी होगा कि वह अंधेरे के लिए अनुकूलित होकर उड़ान भरे। इसीलिए उड़ान से पहले उसे काला चश्मा पहनना होता है। दूसरी ओर किसी कंपोज़िटर के लिए तेज़ रोशनी ज़रूरी है।

अपने संवेदी अंगों की क्रियाविधि (फिज़ियॉलॉजी) की बेहतर समझ होने से हमें इस दुनिया को बेहतर समझने में तो मदद मिलेगी ही, थकान व दुर्घटनाओं से भी बचा जा सकेगा।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। उनके निबंधों का एक संकलन 'ऑन बीइंग द राइट साइज़' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नामक संकलन से लिया गया है। यह संकलन सन् 1949 में प्रकाशित किया गया था।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन एवं अनुवाद भी करते हैं।